जय-विजय

प्रकाशक

वृहद् (वड़) गच्छीय श्रीपूज्य जैनाचार्य

श्रीचन्द्रसिंह सूरीश्वर शिष्य

पण्डित काशीनाथ जैन

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड, के "नरसिंह प्रेस" में

मेनेजर पण्डित काशीनाथ जैन

द्वारा मुद्रित।

प्रथमबार २०००] सन् १९२४ [मूल्य ॥)

भूमिका

प्रिय पाठक वर्ग !

आज यह छोटीसी; परन्तु साथही अत्यन्त शिक्षाप्रद कहानी आपलोगोंको भेंट करते हुए हमें बड़ाही आनन्द होता है। यह कहानी इस ज़मानेके लिये, जब कि घर-घरके भाई-भाईमें प्रेमका अभाव और वैर-भावका प्रभाव दिखलाई देता है, प्रत्येक गृहस्थके लिये मार्ग-दर्शकका काम देने वाली है। यदि इसकी हितकारिणी शिक्षाओंका प्रभाव पाठकोंपर पड़ा, तो निश्चयही बहुत कुछ लाभ होनेकी सम्भावना है।

जय और विजय सौतेले भाई होकर परस्पर कितना प्रेम रखते थे, यह देखकर आजकलके उन सहोदर भाइयोंको शिक्षा लेनी चाहिये, जो ज़रा-ज़रासी बातपर आपसमें मरने-मारनेको तैयार हो जाते हैं, और अपना लाखका घर ख़ाकमें मिला देते हैं। साथही उनको अन्यान्य सत्प्रवृत्तियोंसे भी यथेष्ट शिक्षा ग्रहण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। विजय राजाकी धर्म-दृढ़ता इस उपदेश कथाका एक प्रधान अङ्ग है। धर्मके लिये उन्होंने किस प्रकार अपना और अपने स्त्री-पुत्रोंका प्राण सङ्कटमें

डाल दिया था, तथा पीछे इसका कैसा अच्छा परिणाम उन्हें मिला था, वह देखकर अपने धर्मपर दृढ़ होनेका सबको सबक सिखना चाहिये। अस्तु!

आशा है, कि जिस प्रेमसे हमारे पाठकोंनें इस नीति-कथा मालाकी अन्यान्य पुस्तकोंको अपनाया है, उसी प्रेमसे इसे भी अपनायेंगें। हमें जैसा प्रोत्साहन आजतक मिला है, उसीसे उत्साहित होकर हम क्रमसे नयी-नयी पुस्तकें आपकी सेवामें भेंट करते जाते हैं। इसी स्थानपर हम उन विद्वान् समालोचकोंका भी सादर आभार स्वीकार करते हैं, जिन्होंने हमारी प्रकाशित पुस्तकों पर उत्साहवर्द्धक सम्मतियाँ देकर हमें विशेष उत्साहित किया हैं।

इस समय हम परम पूजनीय आगमोद्धारक शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्री सागरानन्दसूरीश्वरजीके शिष्यवर्य्य मुनिराज श्री माणिकसागरजी तथा अमृतसागरजीके पूर्ण अनुगृहीत हैं। जिन्होंने हमारे प्रकाशनके काममें यथेष्ठ सहानुभूति प्रदर्शित की है। आशा है, दोनों सज्जन इसीतरह उत्तरोत्तर सहानुभूति रखते हुए हमारे उत्साहको बढ़ाते रहेंगे।

कलकत्ता
विजयादशमी १९२४। } आपका
काशीनाथ जैन।

साहित्यप्रेमी, परम श्रद्धेय, धर्मनिष्ठ, परोपकारपरायण,
दानवीर, सेठियाकुलभूषण, स्वनामधन्य, माननीय वयोवृद्ध,
बीकानेर-निवासी

बाबू भैरूँदानजी सेठिया

माननीय महोदय !

आपने आजतक अनेकों जैनशास्त्र छपवाकर जनताको निःशुल्क उपहार दिये हैं। आपने जो बीकानेरमें शिक्षा-प्रचारके लिये विद्यालय, कन्यापाठशाला, एवं सेठिया जैनग्रन्थालय बनाकर जैन समाजका भारी उपकार किया है। आपने अनेकों निस्सहाय छात्र-विद्यार्थियोंको आर्थिक सहायता प्रदानकर उच्च शिक्षासीन किये हैं। उन्हीं सब गुणोंसे आकर्षित होकर यह मेरी "जय-विजय" नामक लघु पुस्तिका आपके कर-कमलोंमें सानुनय समर्पण करता हूँ, कृपाकर स्वीकार करेंगे।

आपका

काशीनाथ जैन।

जय-विजय

पहला परिच्छेद

(१)

देश-त्याग ।

किसी समय इस भरतक्षेत्रमें सब प्रकारकी सम्पदाओंसे भरा हुआ, तरह तरहकी ऋद्धियोंसे पूर्ण, अन्यान्य नगरोंको अपनी शोभासे प्रभाहीन करनेवाला, सारे संसारको अपनी अनुपम छटाओंसे आनन्द देनेवाला, 'नन्दीपुर' नामका एक नगर था। दरिद्रता, दुर्भाग्य, दुर्भिक्ष और दुःखका तो उस नगरमें नामो-निशान भी नहीं था। वह सब तरहकी सम्पत्तियोंकी खान था।

उस नगरमें शत्रुओंको त्रास देनेवाले, धैर्य, न्याय और ऐश्वर्यके लीला-क्षेत्रके समान 'धर्म' नामके राजा राज्य करते थे।

राजाके बहुतसी रानियाँ थीं, जिनमें श्रीकान्ता, श्रीदत्ता और श्रीमती नामकी तीन रानियाँ प्रधान थीं। श्रीकान्ता तथा श्रीदत्ताके एक-एक पुत्र हो चुके थे। श्रीकान्ताके पुत्रका नाम जय और श्रीदत्ताके पुत्रका नाम विजय था। ये दोनों राजकुमार पण्डितों द्वारा बड़ी प्रशंसा पा चुके थे और इतने तेजस्वी थे, कि सारा संसार इनके आगे झुकता था। उनका रूप देवकुमारों के समान था। वे अभी बालकही थे; तोभी पूर्वजन्मके संस्कारके कारण उन्हें सभी गुण हस्तामलकवत् हो गये थे। उन दोनों भाइयोंके रूप, रङ्ग, वयस, विद्या, शील, गुण और लक्ष्मी आदि सभी चीज़ें एकसी थीं और उन दोनोंकी आपसमें ख़ासी प्रीति भी रहती थी।

तीसरी रानी श्रीमती स्वभावकी बड़ीही दुष्टा थी। कुछ दिनों बाद उसके गर्भसे भी नय-धीर नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बड़ाही न्यायी था। वैसी दुष्टा माताका ऐसा सुशील लड़का हुआ, मानों कीचड़में कमल पैदा हुआ।

एक बार जय और विजयपर प्रजाका अतिशय प्रेम और उनके गुणोंकी सर्वत्र प्रशंसा होती देखकर रानी श्रीमतीको बड़ा डाह हुआ। उसने अपने मनमें सोचा,—"ये दोनों भाई आपसमें ख़ूब मेलसे रहते हैं और सब तरहके गुणोंकी खान हैं। इन दोनोंके मौजूद रहते, मेरे पुत्रको कौन पूछेगा? मेरा पुत्र तो दासी-पुत्रकी तरह इन दोनोंकी नौकरीही बजाता चलेगा।"

इस तरहका विचार मनमें पैदा होतेही श्रीमतीने भी अपनी

सौतोंके पुत्रोंकी जान लेनेका विचार किया ; क्योंकि अकसर देखा जाता है, कि स्त्रियाँ सौतके बच्चेको कभी प्यारकी आँखोंसे नहीं देखतीं ।

एक समय एक परिव्राजिका उसके पास आयी। रानीने उससे अपने जीकी बात कह सुनायी। साथही बहुतसे धनका लालच दिखाकर उसे अपने मेलमें ले आयी। उस परिव्राजिकाने सिद्ध-चेटक-शक्तिके द्वारा राज्यकी अधिष्ठात्री देवीके नामसे राजाको सपना दिया और कहा,—"हे राजन्! नये पैदा हुए दैत्यके समान दुर्जय जय और विजय बहुतही शीघ्र तुम्हें मारकर यह राज्य हथिया लेंगे। इस लिये उन्हें पुत्र न जानो और व्रण-के समान उन्हें अभी मार डालो। तुमने पूर्वमें मेरी जो आराधना की है, उसीके मारे मैं तुम्हारे हितकी यह बात कहनेके लिये तुम्हारे पास आयी हूँ। अतएव अब तुम्हें जैसा उचित मालूम पड़े, वैसा करो।"

यह सपना देखतेही राजा उठ खड़े हुए। इतनेमें कपट-क्रियामें कुशल श्रीमतीने भी राजाके पास आकर वैसाही सपना खुद भी देखा हुआ बतलाया। रानीके मुँहसे भी ऐसीही बात सुनकर राजा बड़े सोचमें पड़ गये। उन्होंने सोचा,—"अपने सत्यवान् तथा विवेकी पुत्रों जय और विजयके प्रति मैं ऐसा काम कैसे कर सकूँगा? चाँद और सूरजके समान इन पुत्रोंके बिना तो मेरा सारा जीवनही अन्धकारमय हो जायेगा। पर देवताका दिया हुआ सपना तो कभी मिथ्या नहीं हो सकता?

फिर मैं क्या करूँ ? क्या अपने हाथों अपने पुत्रोंका नाश करूं ? नहीं, अपने हाथों बोये हुए विषके पेड़को भी बड़ा हो जानेपर काट डालना अनुचित है ; फिर कल्पवृक्षके समान इन पुत्रोंका संहार करना कब उचित कहा जा सकता है ?"

इसी तरह अनेक प्रकारकी बातें सोचनेके बाद राजाने यही निश्चय किया, कि इन दोनों भाइयोंको क़ैद कर रखूँ, जिससे ये मेरी कुछ बुराई न कर सकें।

सवेरा होतेही राजाने यह हुक्म जारी किया, कि राजकुमार महलोंके भीतर न आने पायें। तदनुसार जब राजा दरबारमें बैठे और वे दोनों भाई नित्यके नियमानुसार उन्हें प्रणाम करनेके लिये आये, तब दरबानोंने उन्हें दरबारके भीतर घुसने नहीं दिया। इससे दोनों राजकुमारोंको बड़ा दुःख हुआ और वे उदास होकर उलटे पाँवों वहाँसे लौट आये। लौटते-लौटते वे इस अनुचित व्यवहारका कारण ढूँढ़ने लगे। परन्तु उन्हें ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई दिया, जिससे राजाको उनपर अप्रसन्न होनेका अवसर हो। यही सोच-विचार कर उन्होंने आपसमें यही निश्चय किया, कि अब इस देशमेंही नहीं रहना चाहिये ; क्योंकि जहाँ अकारणही अपना अपमान हो, वहाँ नहीं रहना चाहिये और जहाँ अपना हद्द दर्जेतक अपमान हो, उसे सहन करके वहीं टिके रहना, अपनी माँके दूधको लजवाना है। इसी विचारसे उन्होंने परदेश जानेकी ठहरायी। कारण, ऐसा करनेसे वे इस अपमानसे बच जायेंगे और कहीं बाहर जाकर अपने भाग्यकी परीक्षा

भी करेंगे। उसी समय राजाको अपनी भूल मालूम पड़ेगी और वे यह समझ जायेंगे, कि उनके पुत्रोंको अपने मानका कितना ध्यान था। इसी समय उन्हें नीतिका यह वचन भी याद आ गया, कि कौए, कायर और मृग लाख अपमान सहकर भी अपनी जगह नहीं छोड़ते ; परन्तु सिंह, सज्जन और हाथी तो कहीं अपमान होनेपर नहीं ठहरते।

साथही उन्हें यह भी ख़याल आया, कि सम्भव है, इसमें पिताजीका कोई अपराध न हो और यह सारा प्रपंच हमारी सौतेली माताने रचा हो, इसलिये कमसे कम पिताको कुछ चेतावनी तो देनी ही चाहिये। यही सोचकर उन्होंने राजद्वार-के तीनों दरवाज़ोंपर ये मतलब-भरी बातें लिख दीं और वहाँसे चलते बने:—

"अरी तुला! तू बेकार अपनेको बराबर न्याय करनेवाली बतलाती है ; क्योंकि तेरा तो यह हाल है, कि गुरु (भारी) वस्तु को नीचे और लघु (हलकी) वस्तुको ऊपर कर देती है।

"हे समुद्र! यद्यपि तुम्हारे पास बहुतसे रत्न हैं, तथापि तुम लहरोंके थपेड़े मारकर उनका निरादर न करो ; क्योंकि इससे तुम्हारी ही हानि है। वे तो तुमसे अलग होकर राजा-ओंके मुकुटमें जा विराजेंगे।

"परन्तु इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह तो कोई और ही है, जो तुममें क्षोभ उत्पन्न करता है। अथवा तुम जो उन्हें त्याग करते हो, यह तो तुम्हारा गुणही है ; क्योंकि यदि

तुम उन्हें यों न त्याग करो, तो उनके गुणोंका प्रकाश कैसे हो ?"

इस प्रकार तीनों दरवाज़ोंपर ये बातें लिखकर वे गुप्तरीतिसे नगरके बाहर निकल गये और भगवान् शान्तिनाथके मन्दिरमें जाकर उनकी स्तुति करने लगे।

भली भाँति भगवान्का पूजन, भजन और स्तवन करनेके बाद वे वहाँसे बाहर हुए। थोड़ी दूर जाते-न-जाते उन्हें बड़ी थका-वट मालूम हुई। इस लिये वे एक बड़के पेड़के नीचे बैठ गये। बैठे-ही-बैठे विजय कुमारको नींद आ गयी। जय जगा हुआ पासही बैठा रहा।

इसी समय उस बड़के पेड़पर रहनेवाली यक्षिणीने यक्षसे कहा,—"स्वामी! ये दोनों मुसाफ़िर आज हमारे पाहुने हैं, इस लिये आज तो हमें इनकी पूरी-पूरी आवभगत करनी चाहिये। अतिथि सदा सबका पूज्य होता है। बड़े पुण्यसे आज हमें ऐसे पुण्यात्मा अतिथि मिले हैं। इस लिये इनको भली भाँति भक्ति करनी चाहिये।"

यक्षने कहा,—"प्रिये! तुमने बहुतही ठीक कहा। मैं तो इन्हें तीन दिव्य वस्तुएँ देकर इनका आतिथ्य करना चाहता हूँ। एक तो महामन्त्र, जिसे शुद्ध मनसे सात बार स्मरण करते ही सातवें दिन बहुत बड़ा राज्य मिल जाता है। दूसरी, महामणि, जो कि स्मरण करतेही चाहे जैसे जीवसे मिला देती है, आकाशमें भी उड़ा ले जाती है, सब प्रकारके विघ्नोंका नाश करती है, श्रेष्ठ समृद्धिका स्वामी बना देती है और तरह-तरहके

इसके बाद यक्षने उन तीनों पदार्थोंके गुण बतलाते हुए जयकुमार को वे तीनों पदार्थ दे दिये।

पृष्ठ ७

सुन्दर पदार्थ खानेको देती है। तीसरी महौषधि, जोकि शस्त्र, अग्नि, सर्प और भूत-प्रेतोंका भय छुड़ा देती है। हे प्यारी! ये तीनों वस्तुएँ इस त्रिलोकीके सार-रत्न हैं।"

इसके बाद यक्षने उन तीनों दिव्य पदार्थोंके गुण बतलाते हुए जय कुमारको वे तीनों पदार्थ दे दिये। उन चीज़ोंको प्राप्त कर जयने सोचा;—"भाग्यवान्‌को कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती। अब क्या है? अब तो हमें किसी बातका भय नहीं रहा। अब मैं भी निडर होकर सो रहूँ।" यही सोचकर वह भी सो रहा।

जब थोड़ी रात बाक़ी रही, तब उसकी नींद खुली और पिता जिस प्रकार प्रेमसे पुत्रको पुकारता है, उसी प्रकार उसने भी विजयको पुकारकर जगाया और उससे यक्षके किये हुए आदर-आतिथ्यकी बात कह सुनायी। साथ ही उसने अपने छोटे भाईको ही राज्य मिले, इस इच्छासे उसे वह महामन्त्र देना चाहा। यह सुनकर विजयने बड़ी विनयके साथ कपट-रहित होकर कहा,—"भाई साहब! आप ही राज्य करने योग्य हैं। मैं तो लक्ष्मणकी तरह आपकी सेवा ही करने योग्य हूँ। बड़ेके रहते छोटेको राज्य मिले, यह बात तो अत्यन्त अनुचित है। इसलिये आप ही इस मन्त्रको जपिये।"

इस तरहकी बात सुन, छोटे भाईको ही राज्य दिलानेकी इच्छा रखनेवाले जयकुमारने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा,—"हे भाई! यों तो हम दोनों ही राजाके बेटे होनेके कारण राज्य

करने योग्य हैं। मैं योग्य हूँ और तुम अयोग्य,ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस लिये आओ,हम दोनों ही इस मन्त्रका जाप करें।”

इसके बाद वे दोनों ही उस मन्त्रका जाप करने लगे। पाठक! देखा आपने? बड़ों और अच्छे पुरुषोंकी यही रीति है। आजकल तो बड़े-छोटे भाइयोंमें कुछ भी प्रेम नहीं रह गया है और थोड़ीसी सम्पत्तिके लोभसे एक दूसरेका गला काटनेको तैयार नज़र आता है। परन्तु जो सचमुच सत्पुरुष हैं, वे तो औरोंपर भी भाईके ही समान प्रीति रखते हैं; फिर सगे भाई-का क्या कहना है?

अपने बड़े भाईकी आज्ञासे विजय कुमार उचित मर्यादा और विनयके साथ उस मन्त्रका जाप करने लगा; क्योंकि छोटेको सदा बड़ेकी आज्ञा पालन करनी चाहिये।

इसके बाद जब सारे संसारका अन्धकार दूर करनेवाले सूर्य भगवान् उदित हुए, तब दोनों भाई वहाँसे चल पड़े। जाते-जाते जयने देखा, कि उसका छोटा भाई विजय राह चलते चलते बेतरह थक गया है। यह देखकर उसने सोचा, कि पासमें चीज़ रहते दुःख उठाना तो मूर्खोंका काम है। यही सोचकर उसने महामणिकी आराधना की और उसीके प्रभावसे आकाशमें उड़ चले। फिर तो उसी मणिके प्रभावसे वे महीनों-का रास्ता दिनोंमें तै करते हुए और जब जो कुछ खाना-पीना चाहते, खाते-पीते हुए, रास्ता तै करने लगे। इसे ही कहते हैं, पूर्व जन्मके पुण्योंका प्रभाव!

दूसरा परिच्छेद

(२)

राज्य--लाभ ।

तरह-तरहके आश्चर्य-जनक दृश्य देखते हुए और स्थान-स्थानपर तीर्थोंका दर्शन करते हुए वे दोनों भाई कई देशोंकी सैर करनेके बाद सातवें दिन स्वर्गके समान सुन्दर और ऊँचे ऊँचे शिखरोंवाले मन्दिरोंसे सुशोभित कामपुर नामक नगरमें पहुँचे। कई दिनोंकी थकावटके कारण वे उसीके पासवाले एक बागीचेमें उतर पड़े और फलोंसे लदे हुए एक बड़ेसे आमके पेड़के नीचे उन्होंने डेरा डाल दिया।

आज सातवाँ दिन है, यह याद आते ही जय कुमारने सोचा,—"महामन्त्रका हमने सात बार जप किया है, इस लिये आज तो हमें कहीं-न-कहींका राज्य मिलना ही चाहिये। परन्तु यदि मैं साथ रहूँगा, तो मेरा यह छोटा भाई कभी राज्यपर नहीं बैठेगा और मैं लाख उसे मनाऊँगा तोभी नहीं मानेगा, इस लिये मेरा यहाँसे हट जाना ही अच्छा है।" यही सोचकर वह किसी बहाने वहाँसे टल गया और मुनिकी भाँति अकेले ही यात्रा करने लगा।

पाठक! देखिये, उत्तम पुरुष कैसे निर्लोभी होते हैं। ये विधाताकी सृष्टिके अद्भुत नमूने हैं। तभी तो ये अपनी धन-सम्पद् भी औरोंको दे डालनेके लिये तैयार रहते हैं और स्वयं धन-दौलतकी मायामें फँसना जंजाल समझते हैं।

इधर कामपुरका राजा एक दिन पहले ही निस्सन्तान अवस्थामें मर गया था। उसने जीते-जी अपना कोई वारिस नहीं ठीक किया था। अचानक मृत्युने उसे अपने चङ्गुलमें फँसा लिया और वहाँका सिंहासन सूना हो गया। इसी लिये सवेरे ही से राजदरबारके सभी बड़े-बड़े कर्मचारी हाथी, घोड़ा, छत्र, चँवर, कलश आदि सामग्री साथ लिये हुए राज्यपर बैठानेके लिये योग्य पुरुषकी खोजमें फिर रहे थे। वे सारे नगरका चक्कर लगा आये; पर उन्हें कहीं सिंहासनपर बैठाने योग्य कोई उत्तम व्यक्ति नहीं मिला। अन्तमें वे घूमते-फिरते वहाँ आ पहुँचे, जहाँ विजय बैठा हुआ था। उसी समय उसके पुण्योंने इस प्रकार प्रेरणा की, कि वह हाथी उसे देखते ही वर्षा-कालके पवन-प्रेरित मेघकी भाँति गर्जन कर उठा। घोड़ा भी हर्षके साथ हींसने लगा। कलशने उसपर आपसे-आप जल बरसाकर उसे मानों राज्याभिषेक दे दिया। सच है, देवताके प्रभावसे क्या नहीं हो जाता? सब कुछ हो सकता है।

उसी समय उसपर छत्र-चँवर ढुलाये जाने लगे। हाथीने तुरत उसे सूँड़से उठाकर अपनी पीठपर बैठा लिया। सारी प्रजाने बड़े हर्षके साथ उसे प्रणाम किया। सारी प्रजा एक साथ जयजयकार

कर उठी। इसी समय आकाशवाणी हुई,—"नाम और गुणमें एक समान इस विजयको मैंने ही राज्य दिलवाया है, इस लिये जो कोई इसे राजा नहीं मानेगा, उसे मैं बड़ा कड़ा दण्ड दूँगा।"

यह आकाशवाणी सुनते ही सब लोगोंने उसके सामने सर झुकाया और उसे राजा मान लिया। लोग दौड़-दौड़कर उसकी सेवा करनेके लिये आगे आने लगे।

इसी समय विजय कुमारने राज्यके मन्त्री आदि प्रधान पुरुषोंसे कहा,—"अभी हालही मेरे बड़े भाई यहाँसे गये हैं। तुम लोग उन्हें ढूँढ़ लाओ और उन्हींको अपना राजा बनाओ; क्योंकि एक तो उनमें राजाके सभी गुण भरे हुए हैं; दूसरे, वे बड़े हैं। उनके रहते मैं राज्यपर कैसे बैठ सकता हूँ?"

अपने बड़े भाईपर उसका ऐसा अटल अनुराग और नीतिका ऐसा गहरा ध्यान देखकर सबने बड़े आश्चर्यके साथ कहा,—"स्वामी! राज्यके अधिष्ठाता देवोंने तो आपको ही यहाँका राज्य दिया है। अब हम इसमें उलटफेर कैसे कर सकते हैं? इस लिये आप कृपा कर हमारे नगरको अपनी चरण-रजसे पवित्र करें।"

उन लोगोंके मुँहसे यह बात निकलते-न-निकलते ही वह हाथी आपसे-आप नगरकी ओर चल पड़ा, क्योंकि देवोंकी इच्छा के सामने मनुष्यकी इच्छाकी हक़ीक़त ही क्या है?

इसके बाद वे लोग बड़ी धूमधामसे विजय कुमारको अपने नगरमें ले आये। चारों ओर शोरसा मच गया। उसी दिन सबने मिल-जुलकर उसका राज्याभिषेक कर डाला।

(३)

मणि-हरण।

पासही एक स्थानमें टिके हुए जय कुमारको भी यह समाचार मालूम पड़ा। वह इस संवादको सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुआ और मन-ही-मन अपनेको कृतार्थ मानता हुआ वहाँसे आगे बढ़ा। उसी मणिके प्रभावसे आकाशकी राह नाना देशोंकी सैर करता हुआ वह जयापुरीमें आ पहुँचा। उस नगरमें जैत्रमल्ल नामका राजा रहता था, जिसके जैत्रदेवी आदि बहुतसी रानियाँ थीं, एकसौ पुत्र थे और जगत् भरकी सुन्दरियोंको शर्मानेवाली जैत्रश्री नामकी कन्या थी।

उसी नगरमें कामलता नामकी एक बड़ी ही सुन्दरी और रसीली छबीली वेश्या रहती थी। उसे देखकर जयकुमार तो उसीपर मोहित हो गया और उसीके घर आ टिका। उसे दिन-रात अपने ही घर पड़े-पड़े दोनों हाथों धन लुटाते देख, उस वेश्याकी माँको यह जाननेकी बड़ी इच्छा हुई, कि यह बेकार

बैठा-बैठा इतना धन कहाँसे लाता है, जो आप भी उड़ाता और हमारा भी घर भरता है? यही सोचकर उसने कामलतासे कहा, कि तुम उससे इसका हाल ज़रूर पूछना।

कामलताने कहा,—"हमें तो माल मिलही रहा है; फिर हमें यह पूछनेसे क्या काम कि वह कहाँसे इतना धन पैदा करता है?"

पर बुढ़िया माननेवाली नहीं थी। उसने बार-बार हठ करनी शुरू की। तब लाचार कामलताने भी कुमारसे पूछना स्वीकार कर लिया।

एक दिन कामलताने जयकुमारसे ख़ूब बातें बनाकर, रिझाकर, हँसाकर बड़े प्रेमसे इस विषयमें प्रश्न किया। वह भी उसके प्रेममें ऐसा पगा हुआ था, कि उसने आव देखा न ताव, सारा हाल उस वेश्याको बतला दिया। एक तो अपने गुप्त भेदकी बात किसीसे नहीं कहनी चाहिये; फिर स्त्रीसे तो कभी कहनी ही नहीं चाहिये; पर जयकुमार उसकी मुहब्बतके मारे भूल कर बैठा।

कामलताने अपनी माँसे ज्यों का त्यों हाल कह सुनाया। सुनतेही उस दुष्टाके दिमाग़में धोखे और फ़रेबकी बातें चक्कर लगाने लगीं। वह उस मणिकोही ग़ायब कर देनेका उपाय सोचने लगी। अब तो वह इधर-उधर उसके कपड़े-लत्तोंमें मणिको खोजने लगी; पर कहीं पा न सकी।

एक दिन उसने दहीके साथ कुमारको चन्द्रहास-मदिरा पिला दी। उस मदिराके प्रभावसे वह बेहोश हो गया। तब

उसने उसके वद्नपरके कपड़े टटोलकर वह मणि निकाल ली और उसकी जगह एक पत्थरका टुकड़ा रख दिया। जब उसको बेहोशी टूट गई; तब भी उस मणिकी सुध उसे नहीं हुई। इसी लिये वह निश्चिन्त बना रहा।

कई दिन बाद उस मणिसे कुछ लेनेकी ज़रूरत मालूम पड़ी। पर उसने जिस वस्त्रमें मणि छिपाकर रखी थी, उसमें मणिकी जगह पत्थर बँधा हुआ देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। सोचते-सोचते उसको यही बात जँच गयी, कि यह काम इसी कुटनी बुढ़ियाका है, नहीं तो यह मुझे बेहोशीकी दवा क्यों पिलाती? यह तो चाहती तो जान ही ले लेती; परन्तु यह तो मेरे बड़े भाग्य थे, जो मेरा सिर साबित बचा रह गया। इन्हीं सब चिन्ताओंके मारे उसका चित्त बड़ा चंचल हो गया। तो भी कामलतापर दिल आ गया था, इसी लिये वह उसका घर छोड़कर और कहीं न जा सका। दुर्व्यसनोंका यही स्वभाव है। उनके फन्देमें पड़नेसे आदमी दुःख भी उठाता है, तोभी उन्हें छोड़ना नहीं चाहता।

अब वह कुटनी बुढ़िया दिन-रात कामलताको निर्धन कुमार को छोड़ देनेके लिये उकसाने लगी। वेश्याओंकी तो यह रीति ही ठहरी। इन्हें तो केवल धनसे प्रेम होता है। कहा भी है, कि संन्यासीके लिये वैभव, कुलनारियोंके लिये चञ्चलता, व्यापारीके लिये फ़िज़ूलख़र्ची और वेश्याके लिये प्रीति अमृतके स्थानमें विष हो जाती है।

बुढ़ियाकी बात सुन, कामलताने कुमारके ऊपर सच्चा स्नेह होनेके कारण कहा,--"माता! यह हमारे बड़े भाग्य थे, जो यह पुरुष न जाने कहाँसे आकर हमारे घर ठहरा और हमें करोड़ों रुपये दे डाले; फिर इसे क्यों घरसे निकालती हो?"

परन्तु बुढ़ियाने कामलताकी एक भी न सुनी और दासीके द्वारा कुमारका अपमान कराने लगी। इससे कुमारके मनमें बड़ी लज्जा और साथ ही अभिमान भी हुआ। इस लिये वह आप ही घरसे बाहर हो गया और दरिद्र भिखमंगेकी तरह एक निर्जन स्थानमें जा बैठा। वेश्याओंके प्रेममें फँसकर लोग अन्तमें ऐसी ही फ़ज़ीहत उठाते हैं!

—०—

चौथा परिच्छेद

(४)
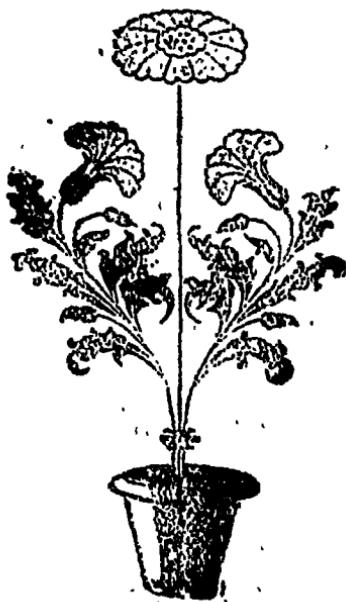
ओषधि भी गयी।

इसी समय उस नगरके राजाकी पुत्री अपनी सखी-सहेलियोंके साथ नदी किनारे टहलने आयी। तरह-तरहके खेल खेलनेके बाद वे सब नहानेके लिये नदी में उतरीं। इतनेमें किसी दुष्ट देवताके प्रभावसे वह राजकन्या एकाएक गिरकर मूर्च्छित हो गयी और मरीसी मालूम पड़ने लगी। उसकी सखियाँ बड़ी मुश्किलसे उसे उठाकर राजभवन में ले आयीं और उसकी बड़ी मुस्तैदीके साथ दवा-दारू होने लगी। परन्तु लाख उपाय-यत्न होनेपर भी कुमारीकी तबियत अच्छी नहीं हुई।

तब लाचार राजाने इस बातकी ड्योंड़ी पिटवायी, कि जो कोई गुणी राजकुमारीको अच्छा कर देगा, उसे करोड़ रुपयेके साथ राजकुमारी भी अर्पण कर दी जायगी। यह घोषणा कुमारने भी सुनी। वह राजाके आदमियोंके साथ ही राजमहल

तक चला आया। उसने राजासे कहा, कि मैं राज कुमारीकी बीमारी अवश्य ही दूर कर दूँगा। यह सुन राजाने उसे उपाय-यत्न करनेकी आज्ञा दे दी।

कुमारने पहले तो ख़ूब विधिके साथ स्नान किया और इसके बाद माला लेकर जाप करनेका ढोंग रचा; क्योंकि बड़े आदमियोंके साथ व्यवहार करनेमें इस तरहका आडम्बर रचे विना काम नहीं चलता। इसके बाद कुमारने अपने पासकी औषधि पानीमें घोलकर राजकुमारीके शरीरपर छिड़क दी। राजकुमारी तुरत ही भली--चङ्गी होकर उठ बैठी। यह देख और कुमारके रूप-रङ्गसे अनुमानकर राजाको इस बातका विश्वास हो गया, कि यह युवा किसी अच्छे कुलका है। यही सोच मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए राजाने कुमारको करोड़ रुपये दे दिये। इसके बाद अच्छा दिन देखकर राजाने बड़ी धूम-धामसे अपनी सुन्दरी कन्याका विवाह भी कुमारके साथ कर दिया। क्या करते? बेचारे वचन दे चुके थे, फिर उसे झूठा क्यों कर होने देते? सज्जन पुरुष सदा ही बात के धनी होते हैं।

कुमार राजमहलमें रहते हुए बड़े सुखसे समय बिताने लगे; पर मन-ही-मन अपनी खोयी हुई मणिको फिरसे पा जानेके लिये चिन्ता करते रहते थे। इन्हीं दिनों एक बड़ा भारी धूर्त्त आकर कुमारसे हेलमेल बढ़ाने लगा। उसने सोचा, कि जब इसने राजकुमारीको ऐसी कड़ी बीमारी दूर कर दी, तब ज़रूर इसके

पास कोई दिव्य औषधि है। यही सोच, उसी औषधिको इसके पाससे उड़ा लेनेके लिये उस धूर्त्तने कुमारसे खूब मेलजोल बढ़ाया और अपनेको भी क्षत्रियका पुत्र बतलाया। वह नित्य कुमारके पास आता, मीठी-मीठी बातें बनाता और उस सीधे-साधे पुरुषके मनमें अपने प्रति प्रीति उपजाता था। धीरे-धीरे वह कुमारका बड़ा ही प्यारा और मुँहलगा हो गया। इसीसे उसने एक दिन कुमारको मेलमें लाकर उस दिव्य औषधिका हाल पूछ लिया और चुपकेसे चुराकर चलता बना। सच है, कभी-कभी आदमी विश्वाससे ही मारा जाता है।

अबके इस औषधिके गुम हो जानेसे कुमारका दुःख और भी बढ़ गया। उसने सोचा, —"एक राजकुमारके लिये धन या राजकुमारीका लाभ होना तो कठिन नहीं है ; पर देवताकी दी हुई चीज़ें फिर कहाँ मिल सकती हैं ? अब इन चीज़ोंको मैं फिर कहाँसे पा सकूँगा ? पर जब भाग्यसे ये चीज़ें देवता-की दी हुई मिल गयी थीं, तब फिर भाग्यमें यदि मिलना बदा होगा, तो मिल जायेंगी, इसके लिये अब शोक ही करके क्या होगा ? दूसरोंको अपना दुखड़ा रो-रोकर सुनानेसे कुछ लाभ थोड़े हो है ?"

यही सोचकर कुमारने अपने मनका दुःख मनमें ही दबा लिया और किसी तरह दिन बिताने लगा।

(५)

औषधि भी मिली।

इधर उस बुढ़ियाने जब कुमारकी मणि चुराकर उस बेचारेको घरसे बाहर चले जानेको मजबूर कर दिया, तब वह मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई। उसने सोचा, कि चलो, अब तो मुझे ख़ज़ाना ही हाथ लग गया, अब क्या है? परन्तु उसने कितनी ही बार कितनी ही चीज़ें उस मणिसे माँगीं; पर उसने कुछ भी नहीं दिया। भाग्यवान्‌को ही इस तरह लाभ हुआ करता है। अभागेके हाथमें कल्पवृक्ष भी हो, तो क्या होता है? इसके सिवा अन्यायसे प्राप्त हुई वस्तुसे मनोरथ सिद्ध नहीं होता। उलटे उससे पापका बोझा ही बढ़ता है।

जब कामलताको यह बात मालूम हुई, तब उसने बुढ़ियाको खूब फटकारा और कहा,—"उस कल्पवृक्षके समान दाताको घरसे निकालकर तुमने कौनसा फ़ायदा उठा लिया? वह तो

भाग्यवान् था। यहाँसे गया, तो राज्य-सुख ही भोगने लगा। नुक़सान तो हमीं लोगोंका हुआ ?"

जब इस तरह कामलताने उसे ख़ूब डाँटा-फटकारा तब वह लालची बुढ़िया मन-ही-मन कई तरहकी बातें सोचती, मणि लिये हुई, जयकुमारके पास आयी। वहाँ पहुँचकर ऊपरसे दुःख प्रकट करती हुई बोली,—"बेटा ! तुम कैसे हम लोगोंको छोड़कर चले आये ? हम लोगोंकी एकबारगी सुध ही विसार दी ? भाग्यसे अब तुम राजाके मान्य जामाता हो गये; इसीसे अब हम ग़रीबिनोंकी याद नहीं आती। पर हम लोग तुम्हें नहीं भूलीं। कारण, कुमुदिनी चन्द्रमाको ही देखकर खिलती है। बेचारी कामलता तो मरूँ-मरूँ हो रही है। इस लिये चलकर उसे जीवन-दान करो। और देखो, न जाने यह कौनसी चीज तुम हमारे घर भूल आये थे। इसका हमें मूल्य और गुण भी नहीं मालूम है। इसी लिये मैं तुम्हें देनेके लिये लेती आयी हूँ, क्योंकि तुमसे बढ़कर हमें और कुछ भी प्यारा नहीं है। इस लिये इसे ग्रहण करनेकी कृपा करो। तुम सज्जन हो, चतुर हो और बुद्धिमान् हो, तुम्हें और क्या कहूँ ?"

यह कह, उसने वह मणि कुमारको दे दी। कुमारको अपनी खोयी हुई चीज़ पाकर बड़ा आनन्द हुआ। उसने बड़ी प्रसन्नतासे उसके हाथसे मणि ले ली और सोचने लगा,—"यह स्त्री बड़ी धूर्त्त है। सच है, पक्षियोंमें कौआ, चौपायोंमें स्यार, पुरुषोंमें जुआरी और स्त्रियोंमें वेश्या बड़ी धूर्त्त होती है।"

यही सोचकर कुमारको एक ही साथ क्रोध, उत्तेजना और हर्षके भाव उत्पन्न हुए। फिर यह विचारकर, कि यह समय क्रोध करनेका नहीं है, उसने कहा,—"अच्छा, मैं किसी दिन तुम्हारे घर आऊँगा।"

यह बात उसने इसी लिये कही, क्योंकि उसे कामलताकी मुहब्बत याद आ गयी। व्यसन बड़ाही बुरा होता है। एक बार इसके फन्देमें फँस जानेपर फिर छुटकारा मुश्किल हो जाता है। उस वेश्याके कपट, धूर्त्तता और विश्वासघातकी बात जानते हुए भी व्यसनके प्रभावसे कुमारका मन कामलताकी ओर खिंचही गया।

अपने दिये हुए वचनके अनुसार वह फिर कामलताके घर पहुँच गया और वही दस्तार बेढङ्गी शुरू हो गयी। वह उसीके घर रहकर मौज मारने लगा और मणिके प्रभावसे मनमाना धन उस वेश्याको देने लगा। उसके प्रेममें वह ऐसा भूल गया, कि अपनी नव-विवाहिता पत्नीको भी उसने अपने दिलसे दूर कर दिया।

जब बहुत दिन इसी तरह बीत गये, तब राजकुमारीने पतिके विरहसे व्याकुल हो, अपने पितासे अपने स्वामीका पता लगा लानेके लिये कहा। राजाने उसी समय मन्त्रीको जय कुमारकी खोजमें रवानः किया। वह भी उसे ढूँढ़ता हुआ उसी रण्डीके दरवाज़ेपर आ पहुँचा और कुमारका नाम ले-लेकर पुकारने लगा। यह पुकार सुनकर बेचारे कुमारको बड़ी शर्म

मालूम हुई और वह मन-ही मन सोचने लगा,—"अब मैं प्रधान स्त्रीको कैसे मुँह दिखाऊँ ? यह तो बड़ा बुरा हुआ, जो इसने मेरे इस लड़केके घरमें रहनेका पता पा लिया ! इस लिये अब तो यही ठीक मालूम होता है, कि राजा साहबसे मिलने न जाकर चुपचाप यहाँसे निकल भागूँ और किसी दूसरे देशमें चला जाऊँ।"

यही सोचकर उसने मणिके प्रभावसे अपना रूप-परिवर्त्तन कर लिया और गरुड़की भाँति वहाँसे उड़ चला। जाते-जाते एक जङ्गलमें पहुँचकर वह रमते योगीकी तरह घूमने लगा। इसी समय उसे ऐसा सगुन दिखाई दिया, मानों उसकी कोई खोयी हुई वस्तु शीघ्रही मिलने वाली हो। थोड़ी ही दूर बाद उसे वही धूर्त्त मिल गया, जिसने उसकी औषधि हथिया ली थी। परन्तु उस धूर्त्तने कुमारको नहीं पहचाना और उसे फ़क़ीर समझ कर वही औषधि दिखलाते हुए पूछा,—"बाबा! इस औषधि-का नाम क्या है और गुण क्या हैं, यह कृपा कर बतलाइये !"

अब तो कुमारने उस औषधिको पहचानकर कहा,—"पहले तुम यह बतलाओ, कि यह औषधि तुम्हें कहाँ मिली, तब तो मैं इसके गुण तुम्हें बतलाऊँगा, नहीं तो नहीं !"

उस धूर्त्तने कहा,—"महाराज! बहुत दिन हुए, मैंने एक महात्माकी बड़ी सेवा की थी। उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे यह औषधि दी थी। मैंने यह तो देखा है, कि यह औषधि कई तरहके दोष दूर करनेवाली है; परन्तु इसके सभी गुण मुझे नहीं मालूम हैं, इसी लिये आपसे पूछा है।"

"पहले तुम यह बतलाओ कि यह औषधी तुम्हें कहाँ मिली तब तो मैं इसके गुण तुम्हें बतलाऊँगा नहीं तो नहीं।" पृष्ठ २२

यह झूठी बात सुन, कुमारने क्रोधातुर होकर कहा,—"अरे झूठा, पापी, चोर कहींका! तू सरासर झूठ बोलता है। यह औषधि तूने चुरायी है। कहीं चोरीकी चीज़ भी फल देनेवाली होती है? चोरी करना बड़ा भारी पाप है। इससे इह-भव और पर-भव दोनोंमें बुरे परिणाम भोगने पड़ते हैं। फिर तूने तो यह चोरी अपने ऊपर विश्वास करनेवालेके साथ घात करके की है। झूठा कहींका! तू सच-सच बोल, कि यह औषधि तूने कहाँ पायी? नहीं तो तू अभी अपने कियेका फल पा जायेगा।"

यह फटकार सुनतेही वह धूर्त्त उस औषधिको फेंककर वहाँसे भाग गया। सच है, पापी अपने पाप छिपानेको चाहे जितना उपाय करे; पर अन्तमें उसका भण्डा फूटे बिना नहीं रहता। साहूकारके सामने आतेही उसकी आत्मा काँप जाती है।

कुमारको अपनी खोयी हुई चीज़ मिल गयी, इसीसे उसने उस चोरका पीछा नहीं किया और परदेशमें आकर वन-वनकी ख़ाक छानते रहनेपर भी उसने अपने मनमें वैसाही आनन्द माना, जैसा रोगीको औषधि पानेसे होता है।

---

(६)

फिर राजकन्या मिली।

एक दिनकी बात है, कि कुमार घूमता-फिरता हुआ श्याम-वामन-रूप धारण कर भोगवती नामकी नगरीमें पहुँचा। वहाँके राजाका नाम सुभोग था, जो सम्पत्तिमें विद्याधरके समान था। उसकी स्त्रीका नाम भोगवती था, जिसके गर्भसे भोगिनी नामकी एक बड़ी ही सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई थी।

जिस दिन भयंकर, श्याम और वामन रूप धारण किये हुए कुमार जय वहाँ पहुँचा और नगरके रास्तोंमें चक्कर लगा रहा था, उसी दिन राजकुमारी भोगिनीको साँपने काट खाया था, जिसके लिये सारे नगरमें यह ढिंढोरा फिर रहा था, कि—

"राजकुमारी भोगिनीको भयङ्कर काले साँपने काट खाया है। उसे जो कोई जिला देगा, उसको राजा अपनी यह कन्या दान कर देंगे और साथही हज़ार घोड़े और सौ हाथी देंगे।"

यह ढिंढोरा सुनकर कुमार खुशीसे नाचने लगा और उसने राजाकी लड़कीको आराम कर देनेका बीड़ा उठा लिया। एक तो लोग उसका रूपही देखकर हँस रहे थे; अबके उसको बीड़ा उठाते देखकर और भी हँसी मचाने लगे। लोग तरह-तरहसे उसकी खिल्ली उड़ाने लगे। बहुतेरे अच्छे-भले लोगोंने तो उसे शिक्षा देते हुए कहा,—"अरे बौना! तू यह क्या करता है? बड़े-बड़े वैद्य और मन्त्र जाननेवाले हार गये, कोई राज-कुमारीका ज़हर न उतार सका। तू क्यों व्यर्थ लालचमें पड़ता है?" नीच पुरुषोंने कहा,—"ज़रूर तेरेही जिलाये राजकुमारी जियेगी; क्योंकि तू साक्षात् वामन है!" मध्यस्थ पुरुष कुछ भी न बोले।

परन्तु इनकी बातोंकी कुछ भी परवा न करते हुए कुमार-ने राजमहलके पास आकर राजकुमारीको जिला देनेकी बात कह सुनायी। राजाने उसे तुरत राजकुमारीके पास चलनेकी आज्ञा दी। वहाँ पहुंचकर थोड़ी देर ऊपरी ढोंग दिखानेके बाद कुमारने औषधिका प्रयोग कर राजकुमारीको भला-चङ्गा कर दिया। सारे दरबारी उसका यह करतब देख, अचम्भेमें पड़ गये। बहुतोंको राजकुमारीके जी उठनेपर बड़ा आनन्द हुआ; परन्तु सब लोग कुमारका वह बेढङ्गा रूप देखकर इसी शोकमें डूब रहे, कि हाय! ऐसी फूलसी सुकुमारी राजकुमारीका विवाह क्या ऐसी बडौल सूरतवाले पुरुषकेही साथ होगा?

राजा भी अपने जीमें सोचने लगे,—"इसका गुण देख और

अपनी की हुई घोषणाके अनुसार तो मुझे इसीके साथ अपनी कन्याका विवाह करनाहीं पड़ेगा ; परन्तु ज़रा विधाताका विचित्र विधान तो देखो, कि ऐसा गुण देकर उसने इसे ऐसा बेडौल रूप दे दिया ! पर अब चिन्ता करके क्या होगा ? जैसे देवी बात मिथ्या नहीं होती, वैसेही बड़ोंकी बात भी झूठी नहीं होती !"

यही सोचकर अपनी स्त्री और कन्याको दुःखी होते देखते हुए भी राजाने उसी बौनेके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेकी तैयारी करनी शुरू कर दी। यह देख कुमारने कहा,—"हे महाराज ! मैं एक तो बौना हूं ही। दूसरे, मेरी अवस्था बहुतही बिगड़ी हुई है। ऐसे आदमीको आप अपनी कन्या कदापि न दें। क्योंकि राजहंसिनी कौएको नहीं मिलनी चाहिये। यदि आपने कन्या दान भी कर दी और उसने मुझे पसन्द नहीं किया, तो आप क्या करेंगे ? समाजही आपको ऐसा काम करनेकी सम्मति क्योंकर देगा ? इस लिये यदि आप अपनी कन्या देना भी चाहेंगे, तो मैं उसे ग्रहण नहीं करूंगा। क्योंकि पाँव वहींतक पसारने चाहियें, जितनी लम्बी चादर हो। जो अपना स्वरूप जाने बिना कोई काम करता है, वह वैसाही मूर्ख है, जैसा कि अंगूरको छोड़कर कांटेदार पौधोंके पास जानेवाला ऊँट और चन्दनको छोड़कर थूक-खंकारपर बैठनेवाली मक्खी। लेना-देना, भोजन करना, सोना, बैठना, बोलना, चलना, कहना, सुनना, क्रोध करना आदि सभी कामोंमें जो अपने स्वरूपको

पहचानकर चलता है, वही बुद्धिमान् मनुष्य है। क्या अपने घरमें, क्या पराये घरमें, चतुर पुरुषोंको चाहिये, कि सदा अपनी शक्ति और प्रतिष्ठाकेही अनुसार कार्य किया करें।"

कुमारके मुंहसे ऐसी युक्ति-भरी बातें सुनकर सब लोग बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ; क्योंकि कहा है, कि—

गुणानुरागिणो स्वल्पास्तेभ्योऽपि गुणिनस्ततः।
गुणिनो गुणरक्ताश्च तेभ्यः स्वागुणवीक्षिणः॥

अर्थात्—"गुणोंके अनुरागी मनुष्य संसारमें बहुत कम होते हैं। उनसे भी कम गुणियों की संख्या होती है। स्वयं गुणवान् होते हुए दूसरेके गुणोंपर रीझनेवाले तो उनसे भी कम होते हैं और अपने अवगुण देखनेवाले तो सबसे कम होते हैं।"

सब सुनकर राजाने कहा,—"सुनो! अब इसमें सोच-विचार करनेकी कोई ज़रूरत नहीं है। यह कन्या तो मैं तुम्हेंही दूंगा। क्योंकि आदरणीय पुरुषोंके लिये उनकी बात प्राणोंसे भी बढ़कर होती है। बातके धनी राजा दशरथने अपनी बात रखनेकेही लिये अपने प्राणोंसे भी प्रिय पुत्र रामचन्द्रको वनवास दे दिया था। इसी बातके लिये राजा हरिश्चन्द्रने नीचके घर पानी भरा था।"

यह कह राजाने अपनी कन्याका विवाह करनेकी बड़ी धूम धामसे तैयारी की। सच है, महत् पुरुष अपनी बात रखनेके लिये सब कुछ कर सकते हैं।

इस प्रकार राजाको अपने सत्यपर दृढ़ देखकर कुमारने अपनी शक्ति प्रकट करनेके विचारसे कहा,—"हे राजन्! मैं आपकी ऐसी सुन्दरी कन्याके साथ ऐसा बुरा रूप लेकर क्योंकर विवाह कर सकता हूं? इसीलिये मैं अपना रूप सुन्दर बनानेका उपाय करता हूं। कारण, साहससे मनुष्य चाहे जो कुछ कर सकता है और शक्तिसे लक्षणहीन भी सब लक्षणोंसे युक्त हो सकता है। इसलिये म तो आगमें कूदकर अपना यह बेढङ्गा रूप बदल देना चाहता हूं।"

यह सुन, सब लोग बड़े अचम्भेमें पड़े; पर सबके सब दम साधे हुए उसका तमाशा देखनेके लिये आँखें फाड़-फाड़कर देखते रहे। कुमारने बहुतसी लकड़ियाँ मंगवा, चिता रचा, उसमें आग लगायी और धधकती हुई आगमें कूद पड़ा। पर महौषधिके प्रतापसे उसका एक बाल भी न जला और मणिके प्रभावसे वह पूर्ववत् सुन्दर होकर बाहर निकला। राजा आदि सभी लोग इस अद्भुत व्यापारको देखकर विस्मयमें डूब गये। जब उन्होंने बड़े आग्रहसे उससे इसका कारण पूछा, तब उसने कहा, कि यह मन्त्रका प्रभाव है; पर महामणि और महौषधिका ज़िक्र भी न किया।

इसके बाद राजाने बड़ी धूमधामसे अपनी लड़कीका ब्याह कर दिया और दहेज़में सौ हाथी, हज़ार घोड़े, महल-मकान, वस्त्र और नाना प्रकारकी सम्पदाएं दान कीं। राजाके अनुरोधसे वह बहुत दिनोंतक अपनी ससुरालमें ही टिका हुआ सुख भोगने लगा।

(७)

राज्य-प्राप्ति ।

एक दिन कुमार जय, घोड़ेपर सवार हो, घूमने निकला था। इसी समय किसी युवती स्त्रीने उसे देखकर अपनी सखीसे पूछा,—"क्यों बहन! यह कौन है?"

सखी बोली,—"यह यहाँके राजाका दामाद है।"

कुमार यह बातें सुनकर बड़ाही उदास हुआ। उसने सोचा,—"उत्तम पुरुष अपने गुणोंसे प्रसिद्ध होते हैं। मध्यम पुरुष पिताके गुणोंसे प्रसिद्धि पाते हैं। अधम पुरुष मामा-नानाके नामसे प्रसिद्ध होते हैं। पर जो लोग ससुरका नाम लेनेपर पहचाने जाते हैं, वे तो अधमोंसे भी अधम हैं।"

ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही वह उदास मुँह किये अपने महलोंमें लौट आया और यही सोचने लगा, कि अपने छोटे भाई विजयके पास चलूँ। परन्तु फिर यह सोच होने लगा, कि मैंने तो अभीतक कोई राज्य नहीं पाया और विजय एक बड़े भारी राज्यका स्वामी है। इस लिये मेरा जाना उचित नहीं;

क्योंकि सूर्यके साथ अन्य छोटे ग्रहोंका मिलाप नहीं होता ; इस लिये यदि मैं भी कोई बड़ासा राज्य हथिया लूँ, तब उसके पास मेरा जाना ठीक होगा।

यह सोच कर वह राज्य देनेवाले मन्त्रको याद करने लगा ; पर वह उसे याद नहीं आया। मन्त्र भूल जानेके कारण उसे बड़ा भारी खेद हुआ। वह अपने कर्मको दोष देने लगा। अन्तमें उसे यही उचित मालूम पड़ा, कि विजयके पास जाये ; क्योंकि सम्भव है, उसे वह मन्त्र याद हो और वह मन्त्र अपने बड़े भाईको बतला दे।

मनमें यही विचार कर वह अपने छोटे भाईके पास आया। परन्तु भाईकी परीक्षाके लिये उसने अपना रूप एक ज्योतिषीका बनाया और पोथी-पत्रा लिये हुए सवेरे-सवेरे राजमहलमें पहुँचा।

विजय राजाके सामने पहुँचकर इस निराले ज्योतिषीने कहा,—"महाराज! मैं ज्योतिषी हूँ। मुझे तुम्हारे घर-द्वार, प्रवास, दिव्य वस्तुकी प्राप्ति और ऐश्वर्यके मिलनेकी पूरी कथा मालूम है।"

ज्योतिषीकी यह बात सुनतेही विजय राजाको सब बातें याद हो आयीं। साथही भाईकी भी याद आतेही उनके दोनों नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये। उन्होंने पूछा,—"अच्छा, ज्योतिषी जी महाराज! कृपाकर यह बतलाइये, कि मेरे बड़े भाई इस समय कहाँ और कैसे हैं? उनके साथ मेरा मिलना क्योंकर होगा? इसका हाल शीघ्र कह सुनाइये।"

ज्योतिषीने कहा,—"वह देवताकी तरह स्वच्छन्द विचरण करता हुआ बड़े आनन्दसे है। वह यहाँसे बड़ी दूर है, इसलिये उसके साथ तुम्हारा शीघ्र मिलना क्योंकर हो सकता है? शायद किसी दिन हो भी जाये, तोभी वह तुमसे क्योंकर मिलने आयेगा, क्यों कि वह तुम्हारे इस वैभवको कैसे सहन कर सकेगा?"

विजयने कहा,—"ज्योतिषी जी! आप इस तरह भाइयोंमें फूट डालनेवाली बात मत कहिये। मैं तो अपने भाईसे इसी लिये मिलना चाहता हूं, कि वे आय, तो मैं यह राज्य उन्हें दे दूँ। वे तो झूठमूठ मुझे राज्य देकर फन्देमें फँसाकर आप अलग हो गये। उनके लिये यही ठीक भी था, क्यों कि बड़े लोग छोटोंको अच्छी चीज़ देही देते हैं, परन्तु मैं उनके पुत्रके समान हूँ, इसलिये उनकी जगहपर ही राज्य कर रहा हूं। वास्तवमें इसपर अधिकार उन्हींका है। मेरे गद्दीपर बैठनेके समय वे यहाँसे लापताही हो गये, नहीं तो मैं उनके रहते हुए कभी गद्दीपर नहीं बैठता। मैं आजतक उन्हींकी राह देखता हुआ अपने ऊपर छत्र-चँवर नहीं धारण करता हूं। यदि आपमें कोई ऐसी शक्ति हो, तो आप कृपाकर मुझसे मेरे भाईकी मुलाक़ात करा दीजिये।"

अहा! कैसा भ्रातृप्रेम है! आजकल भला ऐसे भाई कहाँ देखे जाते हैं? आज तो ज़रासी धन-सम्पत्के लिये लोग सगे भाइयोंका गला काटनेको तैयार हो जाते हैं। फिर जय-विजय तो आपसमें सौतेले भाई थे। परन्तु इस भाई-भाईके झगड़ेका

परिणाम अन्तमें कैसा बुरा होता है और लाखका घर किस तरह खाकमें मिल जाता है, यह देखते हुए भी दुनिया नहीं चेतती, यही बड़े आश्चर्यकी बात है। आशा है, कि हमारे प्यारे पाठक जय-विजयके इस आदर्श भ्रातृ-प्रेमको देखकर उससे कुछ शिक्षा ग्रहण करनेकी अवश्यही चेष्टा करेंगे। अस्तु।

ज्योतिषीने कहा,—"अच्छा, मैं आकर्षण-विद्याका प्रयोग कर उसको यहाँ बुलानेकी चेष्टा करता हूँ।"

यह कह, वह तुरतही लुप्त हो गया और थोड़ीही देरमें जय-कुमारके रूपमें प्रकट हो गया। अपने बड़े भाईको अपने सामने खड़ा देखकर राजा विजय कुमारको बड़ा आनन्द हुआ। उनके शरीरपर रोंगटे खड़े हो आये और वह तुरतही अपने बड़े भाईके चरणोंपर गिर पड़े। कुशल-प्रश्नके बाद राजा विजयने जय कुमारसे राज्य ग्रहण करनेके लिये कितनाही आग्रह किया; पर उसने स्वीकार नहीं किया और केवल वही भूला हुआ मन्त्र फिरसे सीख, तुरतही आकाशकी राह उड़ता हुआ भोगवतीमें आ पहुंचा। वहाँ पहुंचकर वह फिर उस मन्त्रका जाप करने लगा।

इसके सातवें ही दिन नगरके राजाके पास आकर किसी ज्योतिषीने कहा,—"महाराज! आपका मतवाला हाथी अपना बन्धन तुड़ाकर आंधीकी तरह नगर-भरमें घूम मचाता हुआ सारी प्रजामें हाहाकार मचाये हुए है। इससे तो यही मालूम होता है, कि आजसे पांचवें दिन आपकी मृत्यु हो जायेगी।

इसलिये आप कुछ परलोक-साधन करनेकी भी चिन्ता कीजिये।"

यह सुनकर राजा नाराज़ या चिन्तित नहीं हुए, बल्कि इस तरह अपनेको चेतावनी देनेके लिये उस ज्योतिषीको काफ़ी इनाम दिया। इसके बाद पुत्र न होनेके कारण जयकुमार-को ही अपना राज्य दे, उन्होंने एक अच्छे गुरुके पास जाकर चारित्र ग्रहण कर लिया। इसके ठीक पाँचवें दिन उनका शरीर छूट गया और वे मोक्ष-सुखके अधिकारी हुए।

कुछ दिन वहाँ बड़े सुखसे बितानेके बाद राजा जयकुमार बहुतसी सेना आदिके साथ जयपुरीकी ओर चले। वहाँके राजाने जब इस धूम-धामके साथ अपने दामादके आनेका हाल सुना, तब बड़े आदरसे उनकी अगवानी की। इसके बाद कुछ दिनोंतक उन्हें वहाँ रख, अपने नालायक लड़केको राज्य न देकर इन्हें ही अपना राज्य सौंप दिया और आप प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली। पूर्वजन्मका प्रेम छुड़ाये नहीं छूटता, इसीलिये कामलता अब भी जयकुमारके चित्तसे नहीं उतरी और वह दोनों स्त्रियोंके रहते हुए भी उसे तीसरी स्त्रीके रूपमें ग्रहण किये बिना न रह सके। हाँ, उसकी कुटनी बुढ़ियाको देश निकाला दे दिया। कहा भी है, कि बड़ोंका रोष या तोष कभी खाली नहीं जाता।

इसके बाद राजा जयकुमार अपनी इन तीनों स्त्रियोंको साथ लिये हुए अपने भाई राजा विजयकुमारके पास आये। अब तो जयकुमारने महामणि और महौषधि विजयकुमारको दे दीं तथा दोनों भाई बड़े सुखसे समय बिताने लगे।

आठवाँ परिच्छेद

(८)

पूर्व भवकी कथा।

एक दिन रातको राजा विजयने सपना देखा, कि जयन्ती पुरीके राजाकी पुत्रीने स्वयंवरमें उन्हें वरण किया है। नींद खुलतेही उन्हें जयन्तीपुर जानेकी प्रवल उत्कण्ठा होने लगी। फिर क्या था? महामणिके प्रभावसे वे उसी समय आकाश-मार्गसे जयन्तीपुरीकी ओर चल पड़े। वहाँ राजकुमारीके स्वयंवरकी बड़ी भारी तैयारी थी। वे भी एक बड़ा ही भद्दा, वेडौल और कूबड़ेकासा रूप बनाये हुए स्वयंवर-सभामें जा पहुँचे। उनकी वह वेढंगी सूरत देख-देख कर सभीको हँसी आने लगी।

क्रमसे राजकुमारी वहाँ आ पहुँची। देवीने उसे सपना दिया था, कि तू सारे संसारसे श्रेष्ठ पुरुष पतिके रूपमें पायेगी, इस लिये तू स्वयंवरमें आये हुए कूबड़ेके गलेमें ही जयमाला पहनाना। इधर उसकी सुन्दरता देख सभी राजा-राजकुमारोंके मुँहमें पानी भर रहा था। परन्तु एक-एक करके उन सभी लोगोंके रूप-गुणका बखान सुनकर भी राजकुमारी न रीझी और उसने

उसने सबको छोड़कर कुबड़ेकी गरदनमें माला पहना दी। पृष्ठ ३५

सबको छोड़कर उसी कूबड़ेकी गरदनमें माला पहना दी। यह देख सभी राजा-राजकुमार बिगड़ उठे और उस कूबड़ेको तङ्ग करनेके लिये तैयार हुए।

यह देख, कूबड़ेका रूप बनाये हुए राजा विजयने कहा,—"अरे अभागो! अपने भाग्यको क्यों नहीं रोते, जो मेरे साथ झगड़ा करनेको तैयार होते हो?"

यह सुनतेही कितने जने और भी बिगड़े और कूबड़ेको मार कर उसके हाथसे कन्याको छीन लेनेका इरादा करने लगे। यह बात मालूम होते ही राजाने अपना असल रूप प्रकट किया। यह देखतेही सबके सब भौंचक्केसे हो गये। इसी समय एक विमान ऊपरसे आया और उसपरसे एक तेजधारी पुरुष नीचे उतर, राजा विजयके पास आ, हाथ जोड़े हुए कहने लगे,—"हे राजाओंके मुकुटमणि विजयराजा! तुम्हारी लम्बी आयु हो। तुम्हारी सदा जय हो। अब अपनी सब-गुण-आगरी राजकुमारीका विवाह आपके साथ कर देनेके लिये दक्षिणदेशके राजाने आपको बुलाया है, इसलिये चलिये। मैं तो उनका सेवक विद्याधर हूँ।"

इसीसमय वैसेही एक पुरुषने आकर बड़ीही विनयके साथ कहा,-"हे महाराज! उत्तर-देशके राजाने भी इसी तरह आपको अपनी कन्या देनेकेलिये बुलाया है। आपही सब प्रकारसे उसके योग्य हैं।"

इस तरह एक पर एक कई जगहोंसे ब्याहके संदेसे आते देख कर राजा विजयको बड़ाही आश्चर्य हुआ। जयन्तीपुरीके राजाको भी यह जानकर बड़ा आनन्द हुआ, कि ये भी कोई राजाहो

हैं। अब तो राजाने विजयके साथ ठीक वैसेही अपनी कन्याका विवाह कर दिया, जैसे जनकने जानकी रामको व्याही थी। इसके बाद विद्याधरोंके उत्तर और दक्षिण प्रान्तोंमें जाकर राजा विजयने उन देशोंके राजाओंकी लड़कियोंके साथ विवाह किया। उनके नाम वैजयन्ती और जयन्ती थे। श्वशुरोंके आग्रहसे उन्हें कुछ दिन वहीं रह जाना पड़ा।

इसके बाद वे अपनी तीनों स्त्रियों और बहुतसे विद्याधरोंको साथ लिये हुए अपने नगरमें चले आये। नगरके लोगोंने बड़ी धूमधामसे उनका स्वागत किया। इसके बाद दोनों भाईस्त्रियों और नौकर-चाकरोंके साथ बहुतसे सैन्य-सामन्त लिये हुए अपने पिताकी राजधानी नन्दीपुर नामक स्थानमें आ पहुंचे।

उस समय उनके राज्यमें बड़ी गड़बड़ मची थी। कोई शत्रु बहुत बड़ी सेना लेकर चढ़ आया था। उन लोगोंने भी अपने पिताकी सेना तुरत तैयार कर डाली और अकेलेही विजयराजा शत्रुकी सेनाके साथ युद्ध करने लगे। महौषधिके प्रतापसे इनका और इनकी सेनाका बाल भी बाँका नहीं हुआ। शत्रुका दल हार मानकर भाग गया। इसके बाद दोनों भाई जाकर अपने पितासे मिले और सारा हाल सुनाकर उन्हें आनन्दसे पूर्ण कर दिया। उनके आनेपर राज्य-भरमें बड़ी खुशियाँ मनायी गयीं। कुछही दिन बाद विजयके बड़े आग्रहसे जयकुमारको राज्यका भार सौंप कर उनके पिताने अपनी सब स्त्रियोंके साथ निवृत्ति-फलको देनेवाला व्रत ग्रहण किया।

राज्यकी चिन्ताका सारा भार विजयकुमार पर सौंप कर जयकुमार नाम-मात्रके राजा बने रहे। इसी प्रकार दोनों भाई कुछ दिनोंतक राम-लक्ष्मणकी तरह एकही साथ बड़े सुखसे रहे। इसके बाद उन लोगोंने दिग्विजय कर चारों ओर अपने नामका झण्डा गड़वा दिया। विजयने अपने नामपर विजयपुर नामका एक नया नगर बसाया। वहाँ उन्होंने बहुत दिनोंतक बड़े ही आनन्दसे राज्य किया। एक दिन कल्पीकी तरह विहार करते, केवल-रूपी लक्ष्मीसे शोभायमान, सूर्यकी तरह तेजस्वी केवली भगवान् उस नगरमें आये। उनके शुभागमनका समाचार सुन, बड़े हर्षसे जयकुमार उनकी वन्दना करने आये। उसी समय उन्होंने मुनि महाराजसे अपने पूर्व भवका वृत्तान्त पूछा। यह सुन, केवली महाराजने कहा,—

"पूर्वभवकी कथा"

"पूर्व कालमें भूतिलक नामक नगरमें नाना प्रकारकी सम्पत्तियोंसे सुशोभित और परस्पर प्रीति रखने वाले भानु और भान नामके दो भाई रहते थे। एक दिन उन्होंने पिताके श्राद्धके अवसरपर खीर तैयार की। इतनेमें एक कुतिया घरमें घुस आयी और उसने उसे मुँह लगाकर अशुद्ध कर दिया। दोनों भाइयोंने यह देखकर उसे खूब मारा। मारते-मारते उन्होंने उसकी कमर तोड़ डाली। अब तो वह भाग भी न सकी और वहीं

ज़मीनपर पड़ी हुई चिल्ला-चिल्लाकर भौंकने लगी। इसी समय घरमें जो गायका बच्चा बँधा था, वह भी रोने लगा और रोता रोता उसी कुतियाके पास चला आया। यह देखकर सब लोग बड़े आश्चर्यमें पड़े। इतनेमें कोई ज्ञानी मुनि वहाँ आ पहुँचे। दोनों भाइयोंने उनसे इसका कारण पूछा। मुनिने कहा,—'ये दोनों तुम्हारे माँ-बाप हैं। पूर्व जन्मके मिथ्यात्वके उदयसे सात बार तिर्यंच-योनिमें जन्मे और मनुष्यों द्वारा मारे गये। आठवें भवमें अकाम-निर्जरा द्वारा ये दोनों मनुष्य हुए थे। इस समय इन्हें जाति-स्मरण हो आया है और ये सोच रहे हैं; कि हम तो इस दशाको प्राप्त हैं और हमारे पुत्र श्राद्ध कर रहे हैं। इस लिये तुम मिथ्यात्वको त्यागकर सम्यक्त्व ग्रहण करो, जिससे मोक्ष-सुख भी मिल सकता है। श्रेणिका राजाकी तरह अन्य व्रत आदि छोड़कर केवल समकितका पालन करनेसे तीर्थङ्करकी पदवी मिल जाती है। समकितके बिना करोड़ों पुण्यव्रत करनेसे भी कुछ नहीं होता।'

"यह सुन भानु और भानको ज्ञान हो गया और वह कुतिया तथा गायका बच्चा दोनों ही मृत्युको प्राप्त हुए। मृत्यु प्राप्तकर वे देवलोकमें चले आये और दोनों भाइयोंको धर्ममें दृढ़ करनेके लिये अपनी दैवी शक्ति दिखलायी। देव, गुरु और धर्म, इन तीनों तत्वोंकी वे दोनों भाई एकाग्र होकर आराधना करने लगे; उनकी स्त्रियोंने भी समकितका पालन किया। उनकी स्त्रियोंकी बहुतसी सखी-सहेलियाँ भी उनका उपदेश मानकर समकितकी

आराधना करने लगीं। सत्सङ्गतिका ऐसाही प्रभाव होता है।

"एक दिन किसी और मतके माननेवालेके कहनेसे भानुके मनमें इन तीनों तत्त्वोंके विषयमें बड़ी शङ्का उत्पन्न हुई। इससे उसे अतिचार-दूषण प्राप्त हुआ। उसकी स्त्री ऊँचे कुलकी थी, इसलिये अपने बड़े घरकी बेटी होनेका अभिमान किया करती थी। अस्तु; मृत्यु होनेपर वे दोनों सौधर्म नामके देवलोकमें गये। वहींसे आकर तुम दोनों भाई यहाँ जन्मे हो। तुम्हारी वे स्त्रियाँ भी अपनी सखियों सहित तुम्हारी पत्नियाँ बनी हैं। तीनों तत्त्वोंकी आराधना करनेकेही कारण तुम्हें तीन-तीन स्त्रियाँ, तीन दिव्य वस्तुएँ और तीनों खण्डोंका राज्य मिला है। भानुने तीनों तत्त्वोंमें शङ्का की थी, इसी लिये उसके पाससे वे दिव्य वस्तुएँ खो गयी थीं। पूर्व जन्ममें जिस स्त्रीने अपने कुलका अभिमान किया था, वही इस जन्ममें गणिकाके घर पैदा हुई है।"

इस प्रकार अपने पूर्व भवका वृत्तान्त श्रवणकर उन्हें जाति-स्मरण हो आया और उन्होंने आनन्दसे श्रावकधर्म ग्रहण कर लिया। समकित धर्म प्रवर्धित करनेकी इच्छासे विजय राजाने पृथ्वीभरमें वीतरागके धर्मका राज्य फैला दिया। वह स्वयं भी समकितका भली भाँति पालन करने लगे। दूसरे उन्हींका अनुकरण करने लगे। नाना प्रकारकी जिन-पूजा, चैत्ययात्रा, संघभक्ति आदि कार्योंसे मिथ्यात्वका नाश हो गया और समकितकी ज्योति फैल गयी। क्रमसे उनकी रानी विजयाको नन्दन, आनन्द और सुन्दर नामके तीन पुत्र हुए।

नवाँ परिच्छेद।

(९)

धर्म-दृढ़ताकी परीक्षा।

एक समय महा-विदेह-क्षेत्रमें विचरते हुए जिन महाराजसे शक्रेन्द्रने पूछा,—"हे भगवान्! इस समय भरतक्षेत्रमें कौन ऐसा गृहस्थ है, जो वीत-राग-धर्ममें पूरी तरहसे दृढ़ हो?"

भगवान्‌ने कहा,—"इस समय विजयपुरका राजा विजय अपने धर्ममें वज्रकी भाँति दृढ़ है। सम्यक्त्व आदि गुणोंके कारण उसे देवता भी चलायमान नहीं कर सकते। वह अपने धर्ममें पर्वतकी तरह अटल है।"

भगवान्‌की ऐसी बात सुन, हर्षित होकर इन्द्र भी उनकी प्रशंसा करने लगे; परन्तु कोई मिथ्या-दृष्टिवाला देवता जिन-वचनमें विश्वास न होनेके कारण उसको झूठा साबित कर देनेके लिये तैयार हुआ।

इसके बाद वह देवता अवधूतका रूप बनाये हुए विजयपुर नगरमें आया। वहाँ अपनी तरह-तरहकी कलाएँ दिखलाकर उसने राजा विजयको प्रसन्न कर लिया। उसने राजाके

सिरपर अपना ऐसा जादू चढ़ा दिया, कि वह उसे गुरुकी तरह मानने लगे। किसी-किसी समय वह राजाके साथ धार्मिक बहसें छेड़ दिया करता था और धर्मके विषयमें राजाके मनमें तरह-तरहके सन्देह उत्पन्न करनेकी चेष्टा करता था; परन्तु राजाकी युक्तियोंके सामने उसकी कोई युक्ति काम नहीं आती थी।

एक दिन उसने राजासे कहा,—"सर्वज्ञ भगवान्‌ने तो कर्मका मर्म हरण करनेवाला, शिव-शर्मका देनेवाला और दूषणसे रहित धर्म प्रकट किया, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु तलवारकी तीखी धारके समान इस धर्मका सम्यक् प्रकारसे पालन करनेको कोई समर्थ नहीं है।"

राजाने कहा,—"बहुतेरे महत् पुरुष और मुनिगण सम्यक् प्रकारसे धर्मका निर्वाह किया करते हैं।"

उसने कहा,—"ये महर्षि मुनि केवल धर्मका ढोंग रचते हैं। इनके भीतरका हाल कौन जानता है?"

राजाने कहा,—"महाराज! ऐसा न कहिये। जैन मुनि बड़े ही भाग्यवान् होते हैं। वे अर्हन्तकी वाणी पर पूर्ण विश्वास रखते हैं। वे अपना धर्म पूर्ण रूपसे पालन किया करते हैं।"

उसने कहा,—"मैं बहुतसे मुनियोंका साथ कर चुका हूँ, इसलिये मुझे सारा हाल मालूम है। उनके कहने और करनेके बीचमें बड़ा भारी भेद है। बिना जाने और भली

भाँति परीक्षा किये कोई किसीके सिर झूठमूठ कलङ्क क्यों चढ़ायगा ?"

राजाने कहा,—"अच्छा, यदि आपको संदेह है, तो किसी समय उचित परीक्षा की जायगी।"

इस तरहका संवाद होही रहा था, कि इतनेमें कोई पहुँचे हुए गुरु महाराज वहाँ आ पहुँचे। राजाने उठकर खड़े हो बड़ी विनयसे उन्हें प्रणाम किया और बारम्बार उनके गुणोंका बखान करने लगे।

इसी समय उस कपटी जैनने कहा,—"राजन्! जैसे मणिकी परीक्षा किये बिना उसके गुणकी बात नहीं कही जा सकती, वैसे ही इस विषयमें भी समझना। परीक्षा करके जैसा उचित मालूम पड़े, वैसाही करना चाहिये। ठीक-ठीक परीक्षा तो रातके अँधेरेमें ही होती है, इसलिये आप रातको इसकी परीक्षा करें।"

इसी सलाहके मुताबिक़ राजा रातके समय काले कपड़े पहने हुए उसके साथही जोह-टोह लेनेको निकले। घूमते-फिरते हुए उन्होंने एक स्थानपर साधुको वेश्याके साथ बैठकर मद्यमांस उड़ाते देखा। यह देख, यद्यपि राजा धर्मके विषयमें ऐक्य-भाव धारण करनेवाले थे, तथापि निर्वेद, उद्वेग और विभ्रमके कारण वे संकर-भवका अनुभव करने लगे। कुछ सोच-विचार कर राजाने उस मुनिसे कहा,—"मुनिजी! यह आप क्या कर रहे हैं? इस तरह

मर्यादासे बाहर काम करना आपको शोभा नहीं देता। सुरेन्द्र भी जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह आपका चारित्र किधर हवा खाने चला गया? आपके जप-तप क्या हो गये? आपकी क्रियाएँ क्या हो गयीं? क्या आपको ज़रा भी लज्जा या भय नहीं है? ज़रा यह भी तो सोचिये, कि आप यह क्या कर रहे हैं? छिः आपकी बुद्धिको! धिक्कार है आपकी इस बेहयाईको। लानत है आपकी इस ओछी आदत-पर। इसके फलसे आपको दोनों लोकमें दुःख भोगना पड़ेगा। उन दुःखोंको आप हरगिज न सह सकेंगे। आप निष्कलङ्क धर्ममें अपने आचरणसे जो कलङ्क लगा रहे हैं, उसके बदले आपको अनंत दुःखोंसे भरे हुए सागरमें गोते लगाने पड़ेंगे। यदि आपको तत्वका थोड़ा भी ज्ञान हो, तो इस रास्तेसे मुंह मोड़िये। भला आपको ऐसा कुकर्म करना चाहिये?"

साधुने कहा,—"तत्वको जाने बिना ही तुम क्यों ऐसी कड़ी-कड़ी बातें मुझे सुना रहे हो? यही दुनियाकी रीति है। इससे कौन बचा है? चलो, आगे बढ़ो।"

यह सुन, राजाने सोचा, कि यह घोर पातकी है—महा-पतित है; इससे बातें करनाही बेकार है, क्योंकि यह तो अपने समान सारे संसारको जानता है। इसी तरह वे आगे बढ़े, तो एक साधु पर-स्त्री गमन कनता हुआ, एक चोरी करता हुआ और एक मछली मारता हुआ दिखाई दिया। इन सबको महापातकी समझकर राजा चुपचाप अपने घर

चले आये। इसी समय उन्होंने अपने अन्दर-महलसे अपने गुरुको निकलते देखा।

यह विचित्र बात देखते ही राजाके तो होश पैंतरा हो गये। इसी समय उस कपटी पुरुषने कहा,—"महाराज! आप चकराये नहीं। मैंने जो कहा था, वह एकदम सोलह आने सच था। ये सब धूर्त्त हैं। इनका कभी विश्वास न करें।"

राजाने कहा,—"हे अवधूत! साधुओंमें यह बातें होनी असम्भव हैं। जैसे सूर्यसे अन्धकार नहीं पैदा हो सकता, वैसे हो मुनियोंसे ऐसे कुकर्म नहीं हो सकते। मैं तो आँखों देख कर भी विश्वास नहीं कर सकता। यदि यह सब सच हो तो भी सब मुनियोंको एकसाँ समझना ठीक नहीं। किसो दलमें एक चोर निकल आये, तो सभी चोर नहीं माने जा सकते। ऐसा होनेसे तो संसारके सारे कारबार ही बन्द हो जायँगे। चारित्रवान् साधु निश्चय हो पूजनीय हैं। अन्यक्त मत ग्रहण करनेसे निह्नवता प्राप्त होती है।"

उसने कहा,—"हे राजन्! तुम्हारी आँखोंपर परदा पड़ा हुआ है, इसो लिये तुम आँखों देखकर भी उनपर श्रद्धा प्रकट कर रहे हो। परन्तु दृष्टि-राग कोई धर्म नहीं है, धर्म तो तत्त्वका निर्णय करनेमें है।"

राजाने कहा,—"मेरा तो यही ख़याल है, कि सर्वज्ञके वचनमें सन्देह करना उचित नहीं। वीतरागने साधुओंके जो लक्षण बतलाये हैं, वे सत्य हैं। उस भावमें आप मेरे मनमें भ्रम उप-

जाना चाहते हैं, इसलिये आपके साथ बातें करना मैं उचित नहीं समझता।"

यह कह, राजा वहाँसे चल खड़े हुए और वह अभिमानी भी मुँहकी खाकर चला गया। वह फिर नहीं दिखाई दिया।

इसके बाद एक दिन राजा, मन्त्री और समस्त राजकर्मचारियोंको किसी दिव्य पुरुषने सपनेमें आकर यह चेतावनी दी, कि इस नगरमें सर्पोंका बड़ा भारी उपद्रव होनेवाला है, इस लिये नगरके द्वारपर नागेन्द्रकी बहुत बड़ी मूर्त्ति स्थापित कर सब लोग उसकी पूजा करें; क्योंकि इसके सिवा इस उपद्रवसे रक्षा होनेका और कोई उपाय नहीं है।

दूसरे दिन सवेरे जब राजा सब दरबारियोंके साथ सभामें बैठे हुए थे, उसी समय किसी ज्योतिषीने भी आकर यही बात कही। इससे सबके जीसे रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया और सभी नगर-निवासी नाग-देवताकी पूजा करने लगे।

मनुष्य स्वभावतः ही मृत्युके नामसे बेतरह डरता है। वह मृत्युसे बचनेके लिये चाहे जैसा काम करनेको तैयार हो सकता है। वह यह नहीं सोचता कि, कोटि यत्न क्यों न करो; पर मृत्यु तो एक दिन आवेगीही—उससे तो जान बचनेकी नहीं है। फिर मृत्युसे बचनेके लिये नहीं करने योग्य काम क्यों करना? जो बुद्धिमान् और ज्ञानवान् होते हैं, वे तो मृत्युसे कभी नहीं डरते और सदा धर्मका ही पल्ला पकड़े रहते हैं।

इसीलिये सब नगर-निवासियों और दरबारियोंके लाख

कहने पर भी राजा विजयने नागदेवताकी पूजा करनेका विचार मनमें नहीं आने दिया ; क्योंकि उनके हृदयमें तो शुद्ध ज्ञान रमा हुआ था और उनके चित्तपर सम्यक्त्वकी छाप पड़ी हुई थी। जब राजाने किसीकी एक न सुनी, तब एकाएक उनके राजमहलके चारों ओर साँप-ही-साँप दिखलाई पड़ने लगे। यह देख, सब लोग डर गये। राजा भी सभासे उठकर घरके अन्दर चले आये। वहाँ भी यही हाल देखनेमें आयी। तब सब स्त्री-परिवारको वहाँसे हटाकर वे दूसरे महलमें चले गये; पर वे जहाँ-जहाँ गये, वहीं उन्हें सर्पोंका उपद्रव दिखाई दिया।

यह देख, सब राजकर्मचारी सोचने लगे,—"महाराजकी यह कोरी हठ है। थोड़ीसी बातके लिये बहुत बड़ा उपद्रव सिर पर उठा रहे हैं। अपने आप अपनी बुराई कर रहे हैं।" यही सोचकर मन्त्री आदिने राजाके पास आकर बड़ी विनयसे कहा,—"महाराज इस सङ्कटको सिरसे हटानेके लिये आप अब भी नागकी पूजा क्यों नहीं करते? रोग उत्पन्न होनेपर दवा नहीं करना तो बड़ा बुरा है। आप नागकी पूजा करें, यह सारा उपद्रव आपही दूर हो जायगा।"

परन्तु राजाने किसीका समझाना-बुझाना नहीं सुना। तब नागदेवताने स्वप्नमें राजासे कहा,—"मूर्ख! तुझे मेरा पराक्रम नहीं मालूम है। क्रोध होनेपर मैं साक्षात् यमके समान हो जाता हूँ और प्रसन्न रहनेपर कल्प-वृक्षके समान मनमानी इच्छा पूरी कर देता हूँ। तू प्रकटमें मेरा प्रभाव देखकर भी

राजपुत्रको साँपने काट खाया, काटतेही वह बेहोश होगया
लोभी राजाका मन न डिगा तब साँपने रानीको डँसा । पृष्ठ ४७

समकितकी शानमें आकर मेरी पूजा नहीं करता, तो भले ही न कर; पर मैं तुझे चेतावनी दिये देता हूँ, कि यदि तू कल सवेरे ही उठकर मेरी पूजा न करेगा, तो स्त्री-बच्चों समेत यम-राजके घर भेज दिया जायगा।"

परन्तु इतने पर भी अपने धर्ममें दृढ़ राजाने नागकी पूजा नहीं की। तब उसी दिन राजपुत्रको साँपने काट खाया, काटतेही वह बेहोश हो गया। तो भी राजाका मन न डिगा। तब साँपने रानीको डंसा। इस बार भी राजाका चित्त न डोला। वे रानी और राजकुमारकी बेहोशी दूर करनेका यत्न करने लगे; पर कोई फल नहीं निकला। यह देख कर सभी कर्मचारी इस सोचमें पड़ गये, कि अब क्या करना चाहिये? इसी समय वहाँ एक सँपेहरी आया। उसे देखकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और सबने उससे सारा हाल कह सुनाया। सारी बातें सुननेके बाद उस सँपेहरीने कहा,—"यद्यपि बड़े भयङ्कर काले नागने इन्हें काट खाया है, तो भी मैं अपनी शक्ति-भर उपाय करता हूँ।"

यह कह, वह एक कन्याके हाथमें अक्षतपात्र रखकर उस पर मंत्र पढ़-पढ़कर अक्षत रखने लगा। थोड़ी ही देरमें नाग-देवता प्रकट हुए। उन्हें देखतेही सँपेहरीने कहा,—"हे सर्पराज! अब तो क्रोध दूर करो। बेचारे व्यर्थ ही दुःख पा रहे हैं, इनका दुःख दूर करो।"

सर्पराजने कहा,—"यदि यह सिर झुकाता, तो फिर झगड़ा

काहेका था ? यह तो बार-बार कहने पर भी मेरी पूजा नहीं करता; फ़िर मेरा क्रोध कैसे दूर हो ?"

सँपहेरी बोला,—"राजन् ! महज़ सिर झुका देनेसे ही यदि यह झगड़ा निबटता है, तो फिर आप क्यों हठ कर रहे हैं ! एकबार भी नमस्कार करनेमें आपकी क्या हानि है ? इसमें मैं तो कोई हानि नहीं समझता। क्योंकि इससे आपका भी भला होगा और आपके साथ-साथ सभी प्रजाका भला होगा। यदि इसमें आपको दोष भी मालूम होता हो तो भी आप अभी ऐसा करके सिरसे बला टाल दें, पीछे प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो जाइयेगा।"

राजाने कहा,—"ये सब बातें उनके लिये हैं, जो कमज़ोर दिलवाले हैं। धीर पुरुष तो मर जाते हैं; पर कभी उलटे रास्ते नहीं जाते। थोड़ा भी अतिचार करनेसे मेरे धर्ममें कलङ्क लग जायगा। पीछे प्रायश्चित्त करनेकी अपेक्षा तो पहले ही ऐसे कर्मसे बचे रहना; जिसमें प्रायश्चित्त करना पड़े, लाख दर्जे अच्छा है। पैरमें मिट्टी-कादा लगाकर पैर धोनेकी अपेक्षा तो कादेके रास्ते ही नहीं जाना कहीं अच्छा है। दृढ़ पुरुष इस तरह फिसल नहीं जाया करते। स्त्री-पुत्रोंका संयोग तो सदा ही सब जन्मोंमें होता है; परन्तु धर्मका संयोग मिलना बड़ा ही कठिन होता है। इसी लिये इनके कारण मैं धर्मको क्यों छोड़ूँ ? मनुष्यको सबसे बढ़कर अपने प्राण प्रिय होते हैं; पर मैं उनका त्याग करने को भी तैयार हूँ; किन्तु धर्मत्याग करनेको तैयार नहीं। मैं तो तुमसे केवल इतना ही कहता

हूँ, कि यदि तुममें शक्ति हो तो मेरे स्त्री-बच्चोंको जिलाओ और नहीं तो अपने घरकी राह नापो। मैं यह जानता हूं, कि सारे जीव कर्मके अधीन हैं और जबतक आयु रहती है, तभी तक कोई तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र या औषधि काम आती है।"

यह सुन, सँपेहरीने नाराज़ होकर कहा,—"राजन्! आपको धिक्कार है, जो आप मेरी बात टालकर अपनी हठपर अड़े हुए हैं। जो हितकी बातें नहीं सुनता, वह पीछे जीवन-भर पछताता है। लो, मैं तो अब चलता हूँ; पर देखना, तुम भी अपनी हठका नतीजा हाथोंहाथ पाओगे।"

इसके बाद नागराजसे यह कह कर, कि तुम चाहे जैसा करो, वह सँपेहरी वहाँसे चला गया।

इसी समय सूर्योदय हुआ और सर्पराजने यह कहते हुए, कि "तू नहीं मानता, तो ले, अपनी हठ और मूर्खताका फल भोग।" राजाके सारे शरीरमें जगह-जगह काट खाया। राजाको बड़ी भयानक पीड़ा होने लगी। वे थोड़ीही देरमें बेहोश होकर गिर पड़े। राजाका यह दुःख देखकर उनके कितने ही सेवक भी मूर्च्छित हो गये। जब राजाको कुछ होश हुआ, तब अपने स्त्री-पुत्रके मरनेका संवाद सुनकर और भी दुःखित हुए। इसी समय वह सँपहेरी फिर आ पहुँचा और राजाकी दशापर दया दिखलाता हुआ बोला,—"राजन्! अब भी तो चेतो। अपनी भलाई-बुराईका पूरी तरह विचार कर नागराजके सामने सिर झुकाओ, तुम्हारे सब संकट टल जायेंगे।"

दुःखसे व्याकुल होते हुए भी राजाने अपना धर्म छोड़ना स्वीकार नहीं किया और बड़ी दृढ़तासे कहा,—"बस, इस विषय-में तुम मुझसे कुछ भी न कहो। सिर्फ़ इतनाही बतलादो, कि ऐसे ज़हरीले साँपका काटा हुआ मनुष्य कबतक जीता रहता है।" सँपेहरीने कहा,—"इस जातिके सर्पका काटा हुआ आदमी छः महीने तक दुःख भोगता है। इसके बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। राजन्! तुम इतने दिन दुःख कैसे सहन करोगे?"

राजाने निर्विकल्प चित्तसे कहा,—"धर्मके लिये दुःख सहनेमें तो मज़ा ही मालूम होता है। छः महीने की तो बातही क्या है, यदि छः युग भी इसी तरह दुःखमें पड़े-पड़े बीत जायें, तो भी मैं हँसते-हँसते सह लूँगा। धर्मके लिये सङ्कट झेलनेसे अन्तमें सुखही होता है। धर्मको छोड़नेसे अनन्तकाल तक दुःख उठाना पड़ता है। दुःख तो पिछले जन्मोंके पापका ही फल है। इस लिये अपने ऊपर संकट आये, तो यही समझना चाहिये, कि पिछले पापही कट रहे हैं। धर्म सदा सुखका देनेवाला है। इस लिये धर्मके निमित्त दुःख सहनेमें नहीं घबराना चाहिये।"

राजा ऐसा कही रहे थे, कि इसी समय उनपर पहले वस्त्र की, पीछे पुष्पकी और फिर सुवर्णकी वृष्टि हुई। दुन्दुभीकी ध्वनि होने लगी और सब लोग "धन्य-धन्य" कहते हुए नज़र आने लगे। जैसे वीतरागको दान देनेसे पञ्च दिव्य प्रकट होते

हैं, वैसेही राजाकी धर्म-दृढ़ताके प्रतापसे पञ्च दिव्य प्रकट हुए। सचमुच धर्मकी महिमा अपार है।

इसी समय राजाकी सारी पीड़ा दूर हो गयी और एक अत्यन्त तेजस्वी देवने प्रकट होकर कहा,—"हे राजन्! तुम चिरंजीवी हो। इस संसारमें तुम शिरोमणि यो धन्य पुरुषोंके भी धन्यवादके पात्र हो। प्रशंसनीय पुरुषोंसे भी प्रशंसनीय और मान्योंके भी मान्य हो। तुम्हारे धर्मकी प्रशंसा इन्द्रके मुँहसे सुनकर मुझे उसपर विश्वास नहीं हुआ, इसी लिये मैं तुम्हारी परीक्षा करने आया था। देवमायाके प्रभावसे मैंनेही तुम्हें सुशील मुनियोंको भी बुरा आचरण करते हुए दिखलाया। मैं-नेही सर्पोंका उपद्रव खड़ा किया। एकहीको बुरा काम करते देखकर आदमीके मनमें सन्देह होने लगता है; पर मैंने तुम्हें कई जनोंको भ्रष्टाचार करते दिखलाया, तो भी तुम अटल श्रद्धा-वान् बने रहे। स्त्री-पुत्रके लिये, अपनी जानके लिये, मनुष्य क्या-क्या कुकर्म नहीं कर डालता; परन्तु तुमने सबको मरने दिया, आप भी मरनेको तैयार हो गये; किन्तु धर्मको नहीं त्यागा। जब देवमाया भी तुम्हें धर्मसे नहीं डिगा सकी, तब और कौन डिगा सकेगा? अब मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ। मुझे सेवक जानकर आज्ञा दो। मैं तुम्हारी इच्छानुसार काम करनेको तैयार हूँ।"

राजाने कहा,—"मुझे और किसी बातकी इच्छा नहीं है। मैं यही चाहता हूँ, कि धर्मपर मेरी ऐसी ही श्रद्धा बनी रहे।

साथही तुमसे भी मैं यही कहता हूँ, कि मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्व अङ्गीकार करो, जिससे तुम्हारा देवत्व सार्थक हो जाये।"

राजाकी यह बात मान, वह देव सम्यक्त्व अङ्गीकार कर हर्षके साथ वहाँसे चला गया।
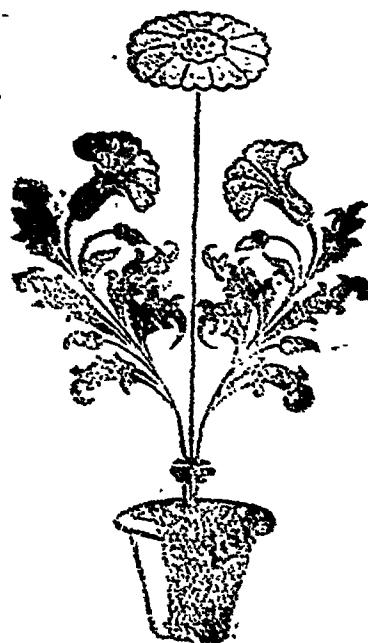
उपसंहार।

इसी प्रकार धर्मकी दृढ़ता दिखलाते हुए विजय राजाने बहुत दिनोंतक राज्य किया। एक दिन उन्हें इस बातपर बड़ी ग्लानि होने लगी कि, कि मैंने अभीतक चारित्र क्यों नहीं ग्रहण किया? उन्होंने सोचा,—"चारित्रके विना मोक्ष नहीं प्राप्त होती। यदि दर्शन शुद्ध हुआ, तो चारित्र भी शुद्ध होता है और इससे मनुष्य सर्वदर्शी हो जाता है।"

इसी प्रकारके विचारोंके अनुसार राजाने अपने बड़े बेटेको गद्दीपर बैठाकर आप विमलाचल-तीर्थकी यात्रा की। वहाँ पहुँचकर वे विधिपूर्वक तीर्थकी आराधना करने लगे। तीनों वेला भगवान्‌की पूजा-अर्चा तथा चैत्यके जीर्णोद्धार आदिके विचारमें रहते हुए वे अपना जन्म सफल करने लगे।

एक दिन सन्ध्याके समय वे जिनेश्वरकी भली भाँति पूजाकर, स्थिर परिणाम और सुन्दर रीतिसे समकितकी भावना करने लगे,—

"अहा! वीतरागने सुख-साधनके लिये कैसा अपूर्व धर्म बतलाया है, जिसके बलसे मनुष्य आसानीसे इस संसारके पार

पहुँच जाता है। परमात्म स्वरूप अरिहन्तदेव, परमाचारवान् गुरु और सबसे बढ़कर धर्मके द्वारा इस जैन-धर्मकी महिमा अपूर्व है।"

इस प्रकार धर्म, गुरु और देवकी चिन्ता करते-करते वे अपने निज स्वरूपकी चिन्ता करने लगे। उन्होंने सोचा:—यह आत्माही शुद्ध देव है, परम आचारवान् भावात्माही गुरु है और आत्माके शुद्ध परिणाम-रूप भावही धर्म है।" इस प्रकार तीनों तत्वोंके शुद्ध निर्मल ध्यानके द्वारा वे मोक्षकी सीढ़ीके समान क्षपक-श्रेणीपर पहुँच गये। सच है, इस जीवकी शक्ति अपार है।

क्रमशः रात्रिका समय हुआ; पर राजाके ज्ञानका सूर्य उदय हो जानेसे प्रकाश फैल गया। उन्हें उसी समय सहजही केवल-ज्ञान प्राप्त हो गया।

इसके बाद वे राजर्षि देवताओंके दिये हुए वस्त्र पहनकर पृथ्वीपर विचरण करने लगे। अपनी तीनों स्त्रियों, तीनों पुत्रों, भाई राजा जय, उनकी तीनों स्त्रियों और उनके तीनों पुत्रोंको भी उन्होंने प्रतिबोध दिया और उनसे दीक्षा ग्रहण करवायी। क्रमशः लाख वर्षकी आयु पूरी कर वे सबके साथ सिद्धिको प्राप्त हुए।

प्यारे पाठको और पाठिकाओ! समकितकी आराधनाके विषयमें, उसमें रखी हुई दृढ़ताके परिणामके विषयमें हम जो कहानी आपको सुनाना चाहते थे, वह पूरी हो गयी आपने

देखाही होगा, कि विजय राजाने धर्मके विषयमें कैसी दृढ़ता दिखलायी और स्त्री-पुत्रकी मृत्यु होने तथा अपने प्राणोंपर सङ्कट आ पड़नेपर भी वे किस तरह अचल बने रहे, इसका हाल आपने पढ़ही लिया। अब हम आपसे इतनाही कहना चाहते हैं, कि इस कहानीसे उपदेश ग्रहण कर आप भी धर्मपर उन्हींकी सी अचल श्रद्धा मनमें ले आनेकी चेष्टा करें। आपात-मनोहर माया-जालसे बचें और दुःखका पहाड़ सामने देखकर भी धर्मसे कभी न हटें। सुख-दुःख सम्पद्-विपद्, संयोग-वियोग—यह सब तो कर्मके अधीन हैं। यही जानकर निर्गुणी देवी-देवताओं पर विश्वास करना छोड़ दें और समकित प्राप्त कर, विधिपूर्वक उसीकी आराधना करें। तभी आपका यह पुस्तक पढ़ना सार्थक होगा।